लहर लहर बहाव और अन्य कविताएं

H
811.8
Sh 23 L

H
811.8
Sh23L

रोशन लाल शर्मा

INDIAN INSTITUTE
OF
ADVANCED STUDY
LIBRARY, SHIMLA

लहर लहर बहाव और अन्य कविताएं

भारतीय उच्च अध्ययन संस्थान पुस्तकालय के लिए
16.04.09

रोशन लाल शर्मा

इन्दराज
Entered

© Roshan Lal Sharma
First Edition : 2008
ISBN : 978-81-904236-1-8

ALL RIGHTS RESERVED

No part of this publication may be reproduced or transmitted in any form or by any means, recording, or any information, storage and retrieval system, (except for brief quotation in book review), without permission in writing from the publisher.

G-5960
21-5-09
H
811.8
Sh 23 L

Published by :
Graphit India
Chamber No. 7-A, F.F.,
SCO 866, NAC Manimajra,
Chandigarh - 160 101 (INDIA)
+91 93169 77111
www.graphitindia.com

Chandika Press Private Limited
Printed (for Graphit India) at :
Chandika Press (P) Limited,
126, Industrial Area - I,
Chandigarh - 160 002 (INDIA)

Library IIAS, Shimla
H 811.8 Sh 23 L
G5960

संवेदना, सहृदयता की प्रतिमूर्ति

माँ

के लिए

प्राक्कथन

रोशन के लिए प्रकृति एक ऐसा गवाक्ष है जहां से उसे दिखता है अपना "स्व" और वहीं से तरंगित होता है वह प्रवाह जो जीवन के सागर में अनेक प्रश्नों के उत्तर ढूँढने लगता है। कभी मिलन, कभी बिछोह, कभी आनन्दानुभूति तो कभी ईश्वर और मनुष्य के बीच के रहस्य को खोजने की प्रवृत्ति और कभी यह इच्छा कि काश! उस विहग वृन्द की, एकाएक उड़ान संभव हो पाती। भावुकता और तृप्ति के मध्य जो एक भावात्मक द्वंद्व चलता है उसी की अभिव्यक्ति है 'लहर लहर बहाव और अन्य कविताएं'। प्रकृति के माध्यम से कवि को किसी आंचल का भूला बिसरा स्पर्श याद आता है जो अप्राप्य रह प्रतिपल प्रभासित रहता है।

इस संग्रह की आरम्भिक कविताएं कमोवेश प्रकृति के प्रति संवेदनशीलता से पगी कविताएं हैं जिन में कटि की चुभन है, ऊंची पर्वत शृंखलाएं हैं, झरने हैं, सरिताएं हैं, विहग वृंद हैं, कोकिल की कू कू है। कहीं डूबते सूरज का महिमा – मंडन है और कहीं प्रेयसी की अल्हड़ अंगड़ाई, पर यह एक स्मृति भर है। कुछ कविताओं में समय के गुज़रने का अहसास है। हृदय में अजान अनाम उदासी है। कहीं कहीं लगता है कि यह उदासी अकारण है। मन के खाली होने का आभास है, किसी के न होने का भी ज़िक्र है। एक मुख्य बात यह है कि कवि के होने से उसके न होने का आभास होता है। गर्ज़ यह कि अकेलापन कवि की अनेक कविताओं में उभर कर आता है। एक अजब सी छटपटाहट है जो इन कविताओं के नायक को बुरी

तरह कचोटती रहती है।

प्रेम की परिभाषा देते हुए कवि कहता है कि प्रेम विदेह होने पर भी छुआ, देखा और जिया जा सकता है। उसे याद हैं "रामनगर" और टापू "प्रेमबिन्दु" और इन्हीं के साथ याद है किसी के साथ बिताए वे क्षण जो सुख से लबालब भरे थे। ये अनुभूतियां कवि की सृजन शक्तियां हैं, प्रेरणा स्रोत हैं। अगली एक कविता में प्रेम की अतिरिक्त व्याख्या है। इस प्रेम में आसक्ति नहीं है। विस्मरण और एक अजीब तरह की खदबदाहट है। घुटन है, दर्द है, बेचैनी है और कुछ छूट जाने का आभास है। ऐसा लगता है कि एक लम्बे सहवास की अनुभूति के बाद जुदाई हो जाने से जो एक तरह का विस्थापन आ गया था उसे फिर से पुरने की आहट है और प्रिय के मिलन की संभावना बढ़ गई है। वैचारिक द्वंद्व के कुछ कम होने की प्रतीति भी होती है। सुखकर क्षणों की संभावना कविता के वातावरण को खुशगवार बनाती है। अन्य के अन्यपन यानि 'दि अदरनैस आफ दि अदर' की रक्षा का पूरा आभास है कवि को। पर यही एक बाधा भी है। मिलन के लिए एक को दूसरे की अपेक्षा कुछ अधिक ऊंचा, एक भिन्न धरातल पर होना जरूरी होता है।

लम्बी कविताओं की शृंखला में दूसरे खण्ड की कविता 'प्रियवर संवेदन' विशेष विचारणीय है। स्त्री स्वर के बहाने यह कविता कवि के अपने प्रति दयानतदारी की द्योतक है। " मैं" का "तुम" में पूर्ण विलीन हो जाना, वास्तव में सम्बंधित "मैं" का आत्म कथन है। एक शशोपंज है जिसे मिटाने का कवि की ओर से कोई प्रयास नहीं है। यह एक लम्बा बयान है जिसमें संवेदना का कहीं दृढ़ता के साथ 'सुमेल' है तो कहीं अलगाव है। इसी खण्ड की अन्य कविताओं में "तुम" और "मैं" के मध्य एक लम्बा संवाद है जो संवाद न रह एकालाप हो जाता है। होने व न होने का प्रसंग विशेष ध्यान देने योग्य है। विडंबना भी है यहां । प्यार की तपिश को शक्ति तो माना जा रहा है पर एक संशय भी उतना ही प्रबल है जो किसी निर्णय पर पहुंचने नहीं देता।

तीसरे खण्ड में कवि लौटता है ग्राम्य जीवन की ओर जिसे उसने बड़ी सघनता से जिया है। उसमें मां है, शब्बू बछड़ा है, छांबरी गाय है और दूध की अटूट अजस धारा है। शब्बू एवं कवि के बीच ईर्ष्या का हल्का सा कांटा है। गांव का पूरा रस, पूरी गन्ध, पूरा रंग और पूरा वातावरण सिमट आया है इन कविताओं में। मक्की से भरा खेत और पत्तों का हरियाली से पीतवर्ण में बदलना, मां के वर्चस्व वाले दौर के अस्तित्व का धीरे धीरे ढलना है। यही संवेद्य है इन कुछेक कविताओं में।

रोशन की कविताओं में "बान" के पेड़ का एक अपना अर्थ है। "बान" एक प्रमुख अंग, प्रमुख बिम्ब है जिस के बहाने कवि अपनी संवेदना और प्रकृति के अपूर्व सौंदर्य का बड़ी सघनता के साथ वर्णन करता है। शाख़ से रक्तधारा का बहना एक अन्तिम सत्य की ओर इंगित करता है कि संसार में सभी कुछ सुख–भरा नहीं है। जीवन में अश्रुधाराएं और रक्तधाराएं भी बहती हैं। बन्दरिया के बच्चे–सा है यह जीवन जो मृत या जीवित दोनों दशाओं में अनिश्चय के भंवर में फंसा है। और यह अधोमुख है और किसी भी क्षण शून्य में विलीन हो सकता है। इन कविताओं में छिपा एक सशक्त उप–पाठ अथवा सब–प्लाट है जिसको पढ़ना अति आवश्यक है।

खण्ड चार की प्रारम्भिक कविताओं ही से आभास होने लगता है कि ये जीवन के गम्भीर विषयों को ले कर लिखी गई हैं। 'अस्मिता हमारी' नामक कविता, जिसमें कहा गया है : "घोघें हैं, शम्बूक हैं, हम सब," जीवन के कटु सत्य पर कटाक्ष भी है और जीवन को नए सिरे से व्याख्यायित करने का प्रयत्न भी। 'नपुंसक' जीवन को डीमिथिफाई सी करती हुई प्रतीत होती है। "संकरी गलियों में चाँद" शहर का भयानक दृश्य प्रस्तुत करती है जिसमें शहर की संकरी गलियों में फैली सड़ाँध से उकता कर, चाँद सिकुड़ चुका है। यह सब आदमी की डीह्यूमिनाइज़्ड स्थिति की ओर इंगित करता है।

इन कविताओं के अध्ययन के आधार पर यह कहा जा सकता है कि कवि समय के साथ साथ प्रौढ़ होता गया है। खण्ड चार की कविताएं इस बात की परिचायक हैं। "शब्दों के दुर्ग का द्वारपाल" एक स्कॉलर के चरित्र का सबल विश्लेषण है। ज्ञान तक तब सार्थक नहीं होता, जब तक कि वह मानवीय स्तर पर मनुष्य मात्र के जीवन और उसकी आशाओं को न छुए। कवि के अनुसार, तात्विक समग्रता की प्राप्ति जीवन का चरमोत्कर्ष हो सकती थी, पर ज्ञान में यदि अहम और घमण्ड समाया रहे तो सारी उपलब्धियां अधूरी रह जाती हैं।

खण्ड पाँच में चिन्तन ही चिन्तन है। " बहाव संग बहने का आनन्द ... " कवि की सद्य जागृत अनुभूति है। 'कालचक्र' में काल चेतना और चेतन तत्व पर गम्भीर विवेचना की गई है। अगली कविता 'सृजन' में सृजन प्रक्रिया, विचारों और भावों की निष्पत्ति सृजन सम्बंधी गहरा चिन्तन है। संक्षेप में यह कहा जा सकता है कि इस खण्ड की कविताएं कवि के काव्य चिन्तन और उसकी विचार भूमि तथा जीवन के प्रति अन्तिम दृष्टिकोण की परिचायक हैं। इन सब के बावजूद यह भी लगता है कि अभी भी कवि देह और प्रेम एवं तपस्या व स्वछन्दता में कोई निर्णयात्मक सन्तुलन नहीं बिठा पाया है। सम्भ्वतः इसकी उसे चाह भी नहीं जिस कारण कभी वह देह की दिव्यता की बात करता है तो कभी एक आत्मकेंद्रित तपस्वी की तरह अपने भीतर के संसार से साक्षात्कार करता है। गहन चिन्तन जनित ऊहापोह के बावजूद कवि की काव्यात्मक अनुभूति में वह "उर्मि" भी है जिसकी परिणति होती है "उन्मुक्त उड़ान।"

रोशन की ये कविताएं जिनमें प्रवाह (बहाव) मुख्य बिम्ब के रूप में उभरकर सामने आता है, जीवन की अनेक परतों को अनायास खोलती हैं। मुझे पूर्ण आशा है कि पाठक – वृन्द इस अनूठे संग्रह का भरपूर स्वागत करेगा।

कैलाश आहलुवालिया

क्रम

प्राक्कथन (i - iv)

प्रकृति

बादलों के काफ़िले 1
गोधूलि वेला 2
निःसीम क्षितिज 3
चेतना बिम्ब 4
वेदना 6
कंपकंपाता अन्तःस्थल 8
काश! 9
झरना 10
कांटा 11

प्रेम

लम्हे 13
आज हृदय उदास है 15
तुम्हारा सामीप्य 19
परिधि से परे 22
दोकोर रिश्ता 23
प्रेम 24
प्रेम – बिन्दु 25
अविरल स्रोतस्विनी 28
सहअस्तित्व 33
मिलन 34
विवाद से परे 41
प्रियवर संवेदन! 45
तुम्हारा चेहरा 52
घुटन 53
रूपान्तरण 54
तुम 57

ग्राम्य जीवन

गोशाला में शब्बू	59
बदला	63
एक कांच-भाव	64
बन्दरिया का बच्चा	66

व्यंग्य

अतीत से उभरा बिम्ब	69
उदास चेहरा	70
मातम	71
अस्मिता हमारी	72
नपुंसक	73
संकरी गलियों में चाँद	74
झूठे अधरों का सच	77
मकड़जाल में तन्दरुस्त आदमी	80
शब्दों के दुर्ग का द्वारपाल	81
स्पन्दन	83

चिन्तन

लहर लहर बहाव	85
काल चक्र	87
सृजन	89
स्वतन्त्र हूँ आज	91
दिव्यता देह की	92
जर्जर बैसाखियां	94
गोचर में अगोचर	95
आकृति	96
उर्मि	97

प्रकृति

बादलों के काफ़िले

बादलों के काफ़िले
उन गगनचुम्बी
पर्वतशिखाओं को छू
बहते रहे,
सरपट
दौड़ते रहे . . .

अपना
समूचा अस्तित्व
वह
देखता रहा
उन पर्वतमालाओं,
बादलों के
क्षणिक परिणय में,
महसूस करता रहा
गाता रहा
मन ही मन
नृत्य करता रहा . . .

'स्वं'
और
'त्वं' का
ऐसा अनूठा मिलन
उसे
अनाहत नाद का
संस्पर्श दे
आन्दोलित करता रहा . . .

गोधूलि वेला

गोधूलि वेला
अस्त होता सूर्य

सुदूर
वह रोमांचक क्षितिज
परियों के लोक सा
एकाएक
चेतन से
अचेतन की ओर
और फिर
अचेतन से
चेतन की ओर धकेल
रेत के
ख़ूबसूरत घरौंदे सा
अहसास दे
मुस्कुरा रहा था
वह
अमूर्त
निराकार है जो

उस कलाकार की
अंगुलियां
अभी भी
गतिमान थीं

निःसीम क्षितिज

सुदूर
निःसीम
समतल क्षितिज
उन्मादित हृदय,
ढलती सांझ का
रोमांस,
गहरे
लाल पीले बादल
सरताज
उस अनन्त
क्षितिज का
मन में जगाते
विशाल, अलौकिक भाव

कितना भव्य
विराट का यह
विस्मयकारी संग!

ऐन्द्रिक जगत
अस्त – व्यस्त,
समय – अन्तरिक्ष
आसक्ति – अनासक्ति
द्रवीभूत . . .

चेतना बिम्ब

दिन
शुरू होता है
कुछ यूं -
लगता है
हवा है
आकाश है
बादल धुंध
पर्वत नदी-
सब कुछ

क्षणिक करवट,
अन्त
एक आस का -
तुमसे
मिलने की
रूबरू होने की
ज़िंदा रहने की . . .

एकाएक
झूमती है
कुदरत-
सबका सब सफ़ेद
दुधिया
बर्फ़ के फाहे . . .

नर्म,
शान्त सांसे
कुन्ठित,

उत्कन्ठित . . .

अंगुलाग्र
एकदम सुन्न
गुलाबी अचेतनता,
मनोवेग
निष्क्रिय,
तुम्हारी सांसे
चेतना बिम्ब . . .

चेतना बिम्ब

दिन
शुरू होता है
कुछ यूं –
लगता है
हवा है
आकाश है
बादल धुंध
पर्वत नदी–
सब कुछ

क्षणिक करवट,
अन्त
एक आस का –
तुमसे
मिलने की
रूबरू होने की
ज़िंदा रहने की . . .

एकाएक
झूमती है
कुदरत–
सबका सब सफ़ेद
दुधिया
बर्फ़ के फाहे . . .

नर्म,
शान्त सांसे
कुन्ठित,

उत्कन्ठित . . .

अंगुलाग्र
एकदम सुन्न
गुलाबी अचेतनता,
मनोवेग
निष्क्रिय,
तुम्हारी सांसे
चेतना बिम्ब . . .

वेदना

कोमल कोंपलों के
फूटते ही
अहसास
मीठी वेदना का

कोकिल की
मधुर कू–कू सा
डूबते सूर्य की
शामक लालिमा में
लयबद्ध हो
छू जाती जो
कर्णेन्द्रियों को

कविता के
अलंकृत मुखारविन्द सा
लुभाता जो
रह–रह कर

प्रेयसी की
अल्हड़ अंगड़ाई सा
देती ऐंठन जो
नाभि–केन्द्र में

अर्धचन्द्राकार
उसकी भौंहों सा
मुकुट बन
आंखों के
समन्दर पर जो

प्रेरित करता
डूब जाने को

पेड़ की
शाख़ से गिरते
उस पत्ते सा
स्व–अस्तित्व की
पाकर परिणति जो
लेता है
हिलोरे–
बिछोह के दर्द,
टूटन की
वेदना के संग

वेदना
क्या है आखिर?
उल्लास का
अन्तर्निहित सत्य?

कंपकंपाता अन्तःस्थल

हिमाच्छादित,
विशाल
ऊर्ध्वाकार
पर्वतमालाओं की
श्वेत,
कोणीय चोटियां
पास ही बहती
सरिता की
शीतल सांय–सांय,
शून्य से
अत्यधिक कम
तापमान की
चीरती अनुभूति
ठिठुरता,
कंपकपाता
हृदय का
अन्तःस्थल

काश!

काश!
उस विहग–वृन्द की
एकाएक उड़ान
और
निश्चित अन्तराल
के उपरान्त
पंखों की
शान्त स्थिरता
परिचायक होते
मेरे व्याकुल
और
तृप्त मनस के

काश!
उसका
सहचरी अस्तित्व
एकजुट कर पाता
मेरे बिखरे
मनस को

काश!
उसका सहगान
जोड़ पाता मुझे
मेरे 'स्वं' के
समग्र सत्य से

झरना

पर्वत शृंखला की
दुर्लभ ऊँचाइयों से
फूटा था
वह झरना . . .

बहता अनवरत
गाता निरन्तर
उफ़ान खाता
मस्त संगीत के
नशे में चूर
रूपहले रूप बदलता . . .

नित्य–नूतन
चिरकालिक
बेसुध
अथ–इति से . . .

कांटा

एक छोटा सा,
तुच्छ कांटा
गहरे नीले आंचल से
छूकर
कृत्य–कृत्य हो
अर्थ पाता है . . .

उसे क्या मालूम
मात्र
स्पर्श से
आंचल में सिमटे
एक अस्तित्व को
दिया है उसने
विस्तारण . . .

झरना

पर्वत शृंखला की
दुर्लभ ऊँचाइयों से
फूटा था
वह झरना . . .

बहता अनवरत
गाता निरन्तर
उफ़ान खाता
मस्त संगीत के
नशे में चूर
रूपहले रूप बदलता . . .

नित्य–नूतन
चिरकालिक
बेसुध
अथ–इति् से . . .

कांटा

एक छोटा सा,
तुच्छ कांटा
गहरे नीले आंचल से
छूकर
कृत्य–कृत्य हो
अर्थ पाता है . . .

उसे क्या मालूम
मात्र
स्पर्श से
आंचल में सिमटे
एक अस्तित्व को
दिया है उसने
विस्तारण . . .

प्रेम

लम्हे

यादों का काफ़िला
चलता चला जाता है
बढ़ता चला जाता है
पीछे
धूल का
एक गुबार छोड़ . . .

कुछ ही देर
ठहर पाते हैं
कदमों के निशां
रेत पर
फिर लगता है
जैसे
कारवां गुज़रा ही नहीं

समतल रेत
प्रतीक्षारत . . .

फिर आएगा
शायद
वह काफ़िला
और
चलता चला जाएगा . . .

क़ुरबत का
वह लम्हा भी
कुछ यूं ही
आता है

और बस
चलता चला जाता है . . .

उस लम्हे की
उम्र बढ़ाना
चाहता हूं मैं,
शक्ल देना चाहता हूं उसे
पर
जानता हूं
छिटकते हैं
किस तरह
धूल का गुबार,
परीलोक की धुंध . . .

क्या होते हैं
लम्हे भी!
नहीं रहते वे
बस
बहते रहते हैं
बन जाते हैं
यादें,
काफ़िले . . .

आज हृदय उदास है

आज हृदय उदास है . . .

अनगिनत रंग
क्षितिज के
पंछियों का कोलाहल
सूर्य की लालिमा
में डूबा
अनन्त,
अटूट सरित – प्रवाह
पेड़ – पौधों की
लयबद्ध सरसराहट
और
आकुल हृदय की
टूटी उमंग . . .

मेरा मनस
एक खाली खण्डहर
हर पत्थर जिसका
बिलख – बिलख
रोता है
तरसता है
क्योंकि
तुम नहीं हो . . .

आज रात उदास है . . .

क्योंकि
परिचायक है

मेरा होना
तुम्हारे न होने का . . .

याद है
रात्रि के
प्रत्येक प्रहर की
सांसों की गर्मी?
एकान्त,
स्थिर
आकाश की
गहराई में
डूबे हम
किस तरह
एकात्म होते

तुम्हें
रात का अकेलापन
अखरता,
बिलकुल अस्वीकार्य होता

मैं कहता–
'अरे, निशा संग आकाश है,
महसूस करो'

अनमने भाव से
कहतीं तुम–
'शायद,
पर अभी तो दोनों
एक ही हैं'

आज आकाश अकेला है . . .

निशा
प्रतीत होती है
भिन्न

आज आकाश उदास है . . .

जूझता
अपने अन्तर के
अन्तरिक्ष से
बेचैन,
निःशब्द
रोता है
तरसता है
उस मुट्ठी भर
सहगामी
साये को
वजूद है जिसका
उसकी सांसे,
रक्त प्रवाह

आज आकाश अकेला है . . .

विस्तृत,
विशाल है
चेतना विहीन,
खोखला है
और
निशा
उमड़ता–घुमड़ता
कौतुहल करता
मात्र

एक साया

आज हृदय उदास है . . .

तुम्हारा सामीप्य

तुम्हारा सामीप्य
एक अनूठा
सुरसंगम . . .

स्वरमण्डल
यह मनस
एकाएक
झंकृत हो
बहलाव उत्पन्न करता है
हृदय में

एक अटूट तान
सम्मिश्रण अनगिनत रागों का
सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड में
पैदा करते हुए
कम्पन
अनायास
बेध मेरा
नाभिकेन्द्र
वेदना देती है
अन्तहीन

कैसा अजब
सान्निध्य है यह
अनुभूत जिसमें
रह अदृश्य
देता
गहरी पीड़ा!

वर्तमान का होना,
न होना
कर देता है
विक्षिप्त
मन को
बाधित करता है
अन्तर्मुखी होने पर

अभिव्यक्ति के मोती
जुड़ जाते हैं
बन जाते हैं
जड़

एक
घातक घुटन,
भयानक भंवर
उसके अन्दर

उसकी नियति–
त्रिशंकु

उन्मुक्तता की चाह–
एक विनाशकारी तूफ़ान

संयम, संकोच–
आन्तरिक घर्षण,
एक सिमटी मौत

चीख़
चीत्कार–

सब का सब
मौन

गहरा जाती है
बेहद
टीस

उसका रोना
मात्र
उसका न रह
बन जाता है
सार्वभौमिक

उसके आंसू
बन जाते हैं
जीवन

जीवन – जटिल
बन
तरल प्रवाह
संग बहता
चला जाता है
संवेदना – सरिता के

उसकी गोद
असीम
अन्तरिक्ष बन
समाहित
कर लेती है
सर्वस्व
अपने भीतर . . .

INDIAN INSTITUTE OF ADVANCED STUDY
Acc. No. G-5960
21-5-09
SIMLA

परिधि से परे

तुम्हारे
पारदर्शी बदन
से गुजरती
हर किरण
आंखों में
सेंध लगा
छलका डालती है
अन्तर्निहित प्रेम
जिसका सुकून
बस
बहता चला जाता है . . .

हाड़–मांस की
सीमित परीधि से परे
विशिष्टतम परिकल्पना का
सांस लेता
यथार्थ हो तुम

दोकोर रिश्ता

हैरान करता है
यह रिश्ता
अक्सर मुझे
कहीं
एक भी गांठ नहीं,
तनिक भी
घुमाव नहीं

सीधा सा है यह
दृश्य धागा
महसूस किया जा
सकता है जिसे
छुआ जा सकता है
तोड़ा जा सकता है

परिचित हूं
इसके अदृश्य
सिरे से भी
अति कोमल
स्पर्श से परे
तोड़–फोड़ से
कोसों दूर

प्रेम

प्रेम
मात्र यात्रा नहीं
सुगंधि से
देह तक . . .

विदेह भी है
पक्ष इसका
उतना ही प्रखर
देता है
जो इसे
विस्तार
और
प्रकट होता है
कण-कण में
हर
ध्वनि तरंग में . . .

प्रेम – बिन्दु

जब तुम थे
हर रिश्ते में
तरलता थी
चपलता थी
हर क्षण था
उल्लास,
संवेदना का
चर्मोत्कर्ष

तुम संग बीते
वे दिन
प्रफुल्लित करते हैं
अंकित हो
स्मृतिपटल पर

गुजरा वक़्त देखता हूं
तारे गिनता हूं
खिलखिलाता,
मुस्काता चांद,
आकाश गंगा का
टिमटिमाता झुरमुट
सब तुम था,
प्रकृति का
हर आयाम
था लयबद्ध
जीवन–गति से तुम्हारी

अब

अनुभूति तुम्हारी –
निपट एकाकीपन

याद है
रामपुर गांव का
वह पश्चिमी छोर
जिस संग
बहा करती
गिरिगंगा
और
उसके प्रवाह से बना
वह टीले सा
टापू
'प्रेम – बिन्दु'
कहा करता जिसे मैं . . .

प्रेमोन्मादित तुम
लहलहाते,
काले केशों से अपने
किस कदर
भरा करती
हामी

उस रोमाञ्चक टीले का
एक – एक पल
सहेज कर
रखा है मैंने
कुछ पल
छिपे पड़े हैं
उस टापू की रेत में
और कुछ

निरन्तर जल प्रवाह से बने
गोलाकार कंकड़ों के नीचे

बस तुम्हें
कुछ नहीं करना
जब भी आओ
रेत के
हर उस कण का
स्पर्श करना
जिस पर कभी
कदम पड़े थे तुम्हारे
हर उस
कंकड़–पत्थर को
हल्के से
हिला डालना
जहां मिलेंगे
तुम्हें
अनमोल मोती
यादों के

सम्भाल कर रखना
उन्हें
वे होंगे
प्रेम से सराबोर
उस युग की
मधुर–स्मृति
जिसके सहारे
सांस लेता हूं मैं
कल्पना करता हूं
सृजन करता हूं . . .

अविरल स्रोतस्विनी

वह आम,
अलसाई सी
दोपहर
क़रीब आई मेरे
उसे लेकर

विस्मित सा
मैं
बस
देखता रहा उसे
यक़ीनन
हम साथ थे

उसकी आंखों में
उलझन
एक गहरी
निराशा
वह कुछ भी कहती
मैं पहुंच जाता
सीधे
उसकी तह तक
वह आंखों की
पुतलियां घुमाती
मैं समझ जाता
उनका आन्दोलन
तुरन्त

उसके मन की टीस

बिम्ब बन
उभरती रही
मनस पटल पर
मेरे
करती रही खोखला
दीमक की तरह
भीतर ही भीतर
उसे

मैं ख़ामोश
गूंगा कारण
सुनता रहा
उसे

एक अटूट
विश्वास से
पलटा था
अपने जीवन का
वह पन्ना उसने

मैं
पढ़ना चाहता था
उसे

उसकी
बेख़ौफ़ आंखे
बतिया रहीं थीं
मुझसे
अपलक

सुनना चाहता था

उन्हें मैं

उसके होंठों के बीच
तैरते शब्द
न जाने कहां
विलुप्त होते चले गये

एक गहरी लक़ीर
खींच दी थी
भाग्य ने
उस पन्ने पर
ज़िक्र कर रही थी
जिसका वह

सुबह दिन शाम
हर पल
एक दर्द उक्ताहट घुटन
लावे की तरह
उफ़ान खाता विद्रोह
जो कभी न लांघता
दहलीज़
उसके होंठों की

इससे पहले
कि
यह लकीर
खरोंच बन
अमिट घाव बनती
जला डाला उसने इसे
जिसका दर्द
बहता रहा

उसकी आंखों से
क्षुब्ध मन
बेचैन उसका
नोंचता रहा
रह-रह कर उसे

अन्ततः
जीवन चुना उसने
एक महीन मौत
अनुभव कर
दफ़ना देने की जिसे
क्षमता थी उसमें

कितनी सहजता,
टूटे आक्रोश से
पलटा था
वह पन्ना उसने

अब उसका हाथ
कांप रहा था
अनिच्छुक थी वह
अगला पन्ना पलटने में
काला स्याह
परछाई दृश्यमान थी जिसकी
पहले पन्ने पर
धुंधली कालिख़
देख पा रहा था वह
महसूस कर पा रहा था

फिर अचानक
कह उठी वह-

"चलो,
कुछ अनरियलिस्टिक
बातें करते हैं"

कितना सच था
वह ग़ैरयथार्थवाद
कितना जीवन्त
अनुभूति की
वह
अविरल स्रोतस्विनी
बस
बहती चली गई
सहसा
रुके थे
जब हम
आनन्दित हो
दबी सी
चीख मारी थी
तुमने
कुछ भी और सुनना
नहीं चाहा था
उसके बाद मैंने . . .

सहअस्तित्व

टूट – फ़ूट – प्रूफ़
सहअस्तित्व हमारा
इसका होना,
न होना
बनना,
बिगड़ना
चलता रहता
पल – प्रतिपल . . .

मिलन

मिलना ही था
तुमसे मुझे . . .

मेरा रोम–रोम
रोमाँचित हो
तरस रहा था
सुलग रहा था
संयोग नहीं यह
सहज पड़ाव था
प्रवाह था
अतीत और आज
के मध्य
समावेश
सदियों का

प्रत्यूष वेला
सघन मेघ
गहरी गर्जना कर
बतियाए–
'उठो! आज मिलन है'
न समझ पाया
कि
आमन्त्रण था
तुम्हारा यह
या
अनहद
गुञ्जायमान
निरन्तर

वैचारिक द्वन्द्व –
दबी – दबी सी
ज़हरीली फुंकार,
रस्सल्ज़ वाईपर . . .

पर
आज तो
मिलन था न
सुरमई सुगन्धना
बन गई थीं तुम
अन्तर्तम में मेरे

जटिल ताने – बाने
तार – तार
नृत्य करते नयन
निर्झर नीर बन . . .

निःशब्द
निहारता
तुमको मैं . . .

समय . . . एक अन्तराल . . .

अपने परिवेश से
मुस्काई थीं तुम
मेरे बुलाने पर
पानी से भरा गिलास
तुम्हारा
पारदर्शी गला सींच
प्यास और बढ़ा
जगा रहा था

सैंकड़ों द्वन्द्व
अपनी अतृप्त,
उत्तेजित आंखे
तुम्हारे
अंग – प्रत्यंग पर
गड़ाकर
न जाने क्या – क्या
देख लेना
चाहता था मैं

खुरदरी अंगुलियां
आगे तो बढ़ाई
छुअन से सहसा
अहसास
वेदना का
यूं लगा
खरोंचें आ गई थीं
नर्म,
नाजुक रोमों पर तुम्हारे
निर्मल नेत्रों में
बिम्बित होता रहा
तनाव
तुम्हारी जटिल
पृष्ठभूमि का

तुम्हारा ऐन्द्रिय जगत
और
अन्तर्मन
किस तरह
एक दूसरे से
करते रहे

ठिठोली,
एकटक
देखता रहा था मैं

समय
सर्वस्व समेटे
बहता रहा
पर
तुम्हारे लिए जैसे
शिला बन गया था वह
देख रहा था उसे मैं
तुम्हारी बादामी आंखों में
तैरते हुए
अब वह
तुमसे जनित था
जिसे
चूम लिया था
मैंने

पश्चिमी छोर –
एक लुभावना व्यू
पाईन्स का
दिखलाना चाहा तुम्हें तो
समेट लिया था
अपनी बाहों में मुझे
मेरे 'मैं' का
'तुम' मैं
ऐसा अदृश्य रूपान्तरण
कल्पना से परे . . .

पारम्परिक परिपाटियों का

खाली बर्तन लगातार
यूं बजता रहा
जैसे
ज़िद थी
मुझे
बहरा कर देने की

तुम्हारे अन्तर्द्वन्द्व
के हर आयाम
से भिज्ञ
मर्यादा, नैतिकता
सामाजिक शिष्टता जैसी
अनगिनत जंजीरें,
छिन्न–भिन्न
कर देना चाहता था
जिन्हें मैं

समानान्तर
मनन में
लीन हम
एकात्म
हर द्वन्द्व
चीरते हुए . . .

ज्यों–ज्यों हर लम्हा
हर रंग लिए
शरीर हुआ
रुकना चाहा था मैंने
अपने पागलपन पर
नकेल डाल,
रच–बस जाना चाहा था

विविध रंगों में,
तुम्हारी धरा की
अनन्त गहराई में डूब
जैसे
खो जाना चाहा था

जीवन –
एक सहज प्रवाह
एक मधुर तान
जिसके संग
बस
बह चला था मैं

व्याकुल सरिता
गम्भीर सागर
एक साथ
अतितार सप्तक को छू
एकाएक
शान्त
समेक
लयात्मक
अनाहत

एक अनन्त विस्तार को
समेटा था
उस रोज़ तुमने . . .

अथाह प्रशान्त
ओस की बूंद बन
किस तरह कांपता रहा
तुम्हारे अधरोष्ठ पर

मन हुआ
अन्तर्निष्ठ अन्तरिक्ष
मापूं तुम्हारा
पर
तुमने तो
उत्सव–आमन्त्रण दिया था न

सतही मापदण्ड
स्वतः मूर्छित –
किस तरह अंगीकार किया
तुमने
सम्माद मेरा!

लम्हों की
वह लड़ी
सुनहरी
सहज
प्रकृत
दिव्य . . .

विवाद से परे

इस रिश्ते की
बुनियाद का
कोई भी पत्थर
नहीं है
घड़ा हुआ
व्यक्ति – विशेष के हाथों

इस रिश्ते का सार
नहीं है
अपेक्षा
मात्र इन्द्रधनुषी नहीं हैं
इसके रंग

यह अंकुरित हुआ
जब
हम बने
केवल माध्यम
अनूठी प्रेमानुभूति का

नहीं जानता
न्यायोचित था
यह सब
या
स्वयंसिद्ध

महसूस किया
तो सिर्फ़ इतना
कि

सराबोर है
सृष्टि सर्वस्व
इसी अनुभूति से
हमारा होना –
एक्य – भाव
उचित अनुचित के
कल्पित घेरे से परे

एक
संदर्भ – विशेष की
धूरी हो तुम
अपना अर्थ है जिसका
अपनी अपेक्षाएं,
समझता हूं
स्वीकार्य है
माननीय है
तुम्हारा अस्तित्व

परिसीमाओं की
परिचायिका
कभी न बन पाई तुम
मेरे लिए

तुममें देखा है
मैंने
विस्तार
अक्सर
समावेश
पूरे चान्द की
शीतल चान्दनी
और

अमावस के गहन,
अभेद्य अन्धकार का

जानता हूं
किस तरह
समय – अन्तरिक्ष
जन्मित होते रहते हैं
कोख़ से तुम्हारी
निरन्तर

देखा है मैंने
किस तरह
अपनी
पूर्ण भव्यता में
प्रकट
हर 'क्षण'
विलुप्त हो जाता है
जीवन्त हो सहसा
तुम्हारे नयनों में

उल्लास
तुम्हारे
अंग – प्रत्यंग का
भिज्ञ हूं मैं

तुम्हारी
हर अनुभूति,
वेदना
जीता हूं
हर क्षण
मेरा निजत्व

अब तुम
आभा
तुम्हारे जीवन की

औचित्य अनौचित्य –
बेमानी बहस

प्रियवर संवेदन!

प्रियवर संवेदन!
तुम्हारे व्यंग्य–वचन,
कटु–कटाक्ष
धीरे–धीरे
पृष्ठभूमि बने
मेरे
संवेदनशील
अन्तर्तम के

सहृदया मैं
सुनती अक्सर उन्हें
उन वचनों की
हरित–स्नेहिलता
कचोटती मुझे,
बेध जाती

प्रियवर!
तुम स्वयंभू
केन्द्रक हो
सहज
अस्तित्व का मेरे
तनिक रुको
देख सको तो देखो
मैं हूं संवेदना–
निःसीम
प्रेमातुर संवेदन तुम
हृदय–प्रवाह हूं
मैं तुम्हारा

जीवन लय तुम मेरी
सहगामी – अस्तित्व हमारा
कैसे कर सकते हो
विस्मृत तुम?

प्रियवर!
स्नेह, प्रेम, परिणय, ममत्व
समग्र प्रवाह बन फूटते है
पल प्रतिपल
अंग – प्रत्यंग से मेरे
अस्तित्व आबंटन कहोगे
इसे क्या?

काश!
मेरे देने में प्रियवर
आ पाता
लिंग – वैशिष्ट्य किसी तरह
जानते हो तुम
पूछो अपने अन्तर्मन से
सर्वेसर्वा सौंपा है तुमको
मैंने अपना
'स्वं'
नगण्य है
अभिव्यक्ति
एक हद के बाद –
अनुभूति – शून्य
भावना – शून्य
और हां
सब कुछ भी

शब्दों के

आतंकित अंतरिक्ष से परे प्रियवर
जीया है हमने
एक दूसरे को
गत्यात्मक बनाया
मेरे होने को तुमने
माध्यम बनी
जो कुछ भी
होने का मैं
सार्थकता दी है
उसको तुमने

तनिक रुको प्रियवर!
मैं तो कहीं हूं ही नहीं
अपना 'स्वं' ढूंढती हूं
तो तुम्हारी
बुझी–बुझी आंखों में
तुम्हारे संशयी मनस में
तुम्हारी भाषा की
तीखी धार में
तुम्हारी कुटिल मुस्कान में
तुम्हारी संदेह में डूबी
परछाई में
तुम्हारे विकृत
वैचारिक बिम्बों में
तुम्हारी घुटी हुई चुप्पी में
सब के सब
अमूर्त्त
पर इतने प्रखर
कि
मात्र होना भी
खलता है

कभी–कभी अपना
क्योंकि सार्थकता
इसकी है निहित
तुम्हारे मर्म में
जो है मेरा
शक्तिपुञ्ज

तनिक सोचो प्रियवर!
केवल एक
व्यंग्य–बिम्ब तुम्हारा
झकझोर देता है
समूल चेतना को
समय रुक जाता है
व्यर्थ प्रतीत होता है
अपना होना

प्रियवर सुनो!
मैं
जो मात्र
'तुम' हूं
और
सम्पूर्ण चेतना भी
अविभाज्य हूं
मुझसे जनित
प्रेम–प्रवाह
असीम
जिसमें तुम हो
मैं हूं
यह ब्रह्माण्ड

प्रेम

जिसे कर पाई मैं
आत्मसात
परे है
वैयक्तिक – वैशिष्ट्य से
अब
आशा करती हूं
जन्मित न होंगे
तुम्हारे अभिव्यक्ति – बिम्ब
वैयक्तिकता की
सीमित
ग्रसित सोच से

गवाह हो प्रियवर तुम!
मेरे सुलगते
अन्तर्तम के
कटुता मुझमें भी थी
लोहार की भट्ठी सा दहकता
मेरा मनस
और उसकी कोख़ में छिपी
मेरीजागृत देह
जली हूं मैं
झुलसी हूं
पर रूकी नहीं

स्मृतिपटल से अक्सर
फूट पड़ती है
अश्रुधारा अविरल
जिसने
वास्तविकता की
धरा से जोड़ा
मेरे 'स्व' को

और सींचा
हमारे होने को

अब कह सकती हूं प्रियवर !
इस पूरे घटनाक्रम में
प्रेम का
कम से कम
एक आयाम
अवश्य झूमा होगा
दुर्लभ
अमरत्व से

तभी तो मैं
यानी तुम
यानी वह सब भी
जो लाया
तूफ़ानी हिल्लोरे
ओर
वह भी
जो लहरों का उठना,
सो जाना
बस देखता रहा,
अब भी हूं
और रहूंगी

सादृश्य का सामीप्य
और
अदृश्य की अनन्तता
हर सांस में
जीती हूं प्रियवर

समग्र हूं मैं –
तुमसे, तुममें, तुम तक
और अवश्यमेव
उससे परे भी . . .

तुम्हारा चेहरा

तुम्हारा चेहरा
पृष्ठभूमि
जीवन की

इसकी
नर्म त्वचा,
मटियाली आंखों का
सीधापन,
लुभावने नाक का
नुकीलापन,
हट्ठी होठों की
पंखुडियां,
शरबती जिह्वा का
माधुर्य–
विविध रूप,
रंग इसके . . .

घुटन

घुटन देता
हर क्षण
सुलगती सांसे
तन
अंगारे ओढ़
देता अहसास
होने में
तुम्हारे
न होने का
बेधता अन्तर
भर आता मन
धुंधली आंखें
सिसकियां
सुबकियां
मिट जाता
वजूद

रूपान्तरण

अपने मर्यादित मन से
उक्ताई
नैतिकता के हर पहलू से भिज्ञ
स्वानुभूति की
उस गीली–रेत पर
सहमें कदमों से
आगे बढ़ी थी वह

उसे
अहसास हुआ
खिसकती जा रही थी
उसके पांव तले
धरा जैसे
यथार्थ था जो
आज तक उसका

अपने 'स्व' की
ठोस अभिव्यक्ति में
लगातार
महसूस कर पा रही थी वह
एक अद्‌भुत सजगता
कचोटता प्रतिरोध

स्वसमर्पण–उल्लास
अनुपस्थित

वह देह न रह
विचार

वैचारिकता
विचारधारा बनी
जिसकी
अनुभव – उष्मा
शून्यता बन
ले गई उसे
उसके सीमित अतीत में
जिसमें
अनुभूत
पर्याय बना
हर्ष का, ईर्ष्या का
संघर्ष का, अपमान का
उपलब्धियों व
मान का

कितना पूर्ण था सब कुछ!
अनुभव के
लगभग हर आयाम से
ओत – प्रोत
नैतिकता की
मजबूत बुनियाद पर
टिका
उसका मर्यादा – भवन

अविगत –
एक कड़वा सच
अस्वीकार्य
अखरने लगा था उसे

संयोग के
एकांगी सुख में लीन

उसकी स्वाभाविक उष्मा का
सूक्ष्म,
शीतल रूपान्तरण
और
देने की
मर्यादित दूरी
महसूस करता रहा वह . . .

तुम

मेरे सत्य का
सदाशय भाव
चिरंतन तुम

मेरी अपेक्षा उपेक्षा तुम
मेरा मान अपमान तुम
मेरा प्रेम संगीत तुम
मेरा क्रोध आक्रोश तुम
मेरा अथ इति तुम
मेरा केन्द्रक परिधि तुम
मेरा जीवन मृत्यु तुम

कहीं
मोह–पाश से
मूर्छित
तो नहीं मैं?

मुझे
मुक्ति चाहिए

कर पाओगी
मुक्त मुझे क्या
सह पाओगी
पागलपन
या
मेरे सत्य की
सघन जड़ों में
बैठोगी तुम

स्माधिस्थ?

तुमसे प्रेम

तुमसे प्रेम
कोई विकल्प न था
अपने होने
या
न होने का
संकल्प भी नहीं

कोई स्थिति
यदि उभर पाई
वह थी
निर्वैकल्पिक
जिसमें
तुम, मैं
और वह सब
जो रहा
अमूर्त्त
होता रहा
निर्मित निरन्तर
मिट्टी में
यथार्थ की
और
बन पाया
प्रवाह
नित नया
चिरंतन . . .

ग्राम्य जीवन

गोशाला में शब्बू

उस शाम
एक विचार
अनोखा आकर्षण बन
ले गया
उस छोटी सी
गोशाला में
जहां
हर सुबह
मां की कमीज़ का
पिछला पल्लू
अपनी नन्ही सी
हथेली में
पूर्णतः समेटे
जाया करता
अक्सर मैं

मां का
भावविभोर गायन
और
शब्बू (बछड़े) के साथ
अनौपचारिक वार्तालाप
किया करता
बाधित मुझे
उसकी सोहबत में
जाने को
शब्बू की
नर्म त्वचा,
मुलायम बालों को

सहलाना
सुखद लगता मुझे

शब्बू और छांबरी (गाय) के
परस्पर मिलन की
उत्सुकता,
विवशता को देख
अपने
स्वाधीन–अस्तित्व पर
प्रसन्नचित
मैं
चिढ़ाया करता उन्हें

मां के गायन में
गड्डमड्ड
दूध की अटूट,
सुरमई धारा
और
उसे पीने की मेरी चाह

मां की मनाही
और
मेरे हठ के बीच
जीतता मैं ही
जब
दूध की तेज़ धार
मेरे नाक आंख गाल गले
से होती हुई
आ गिरती
मुंह में
उसकी गुनगुनी मिठास

अलौकिक!

दूध पीकर
शब्बू से कम
न समझता
मैं
अपने आप को
और
फूले न समाता
अपने ही
अनूठे
भावना जगत में

एक थन अनदुहा . . .

शब्बू के
पागलपन का चरमोत्कर्ष . . .

ज्यों ही मां
उसके रस्से की गांठ खोलती
भुक्खड़,
गोलमटोल शब्बू
एक छलांग लगा
छांबरी का दूध पीता
झटके मारता
नृत्य करता
मुझे ईर्ष्या होती

उसके बाद
मां शब्बू को

उसके खूंटे से बांध
छांबरी को
प्यार से थपथपाती
और
जैसे ही
उफ़नती झाग का
मुकुट पहने
दूध से भरा डोलू
उठाती,
अपनी नन्ही सी
हथेली से
कमीज़ का
वही पल्लू पकड़े
मैं कहा करता
'अलविदा'
उस विलक्षण
संसार को

बदला

मां
याद है वह
कड़कती धूप से
जलती दोपहर?

निवृत्त हो
थका कर
चूर कर देने वाली
दिनचर्या से
नहलाना चाहती थीं
तुम मुझे

खैर
नहलाने में तो
कामयाब हो गई तुम
पर कंघी
न कर पाई थीं
मेरी

याद है
तुम्हारे उस दुपट्टे की दुर्दशा?
तार–तार
सब का सब
बदला ले लिया था जैसे
भरपूर मैंने
मेरे साथ
तुम्हारी
ज़बरदस्ती का

एक कांच–भाव

मक्की के पत्तों की हरियाली
ओर
उसके चेहरे का पीलापन–
एक आकर्षक
विपरीतता भाव

निरन्तर गोड़ाई से
खेत के
वक्षस्थल पर बनती
अनगिनत लकीरे
और
असामयिक झुर्रियां
उसके चेहरे की
परस्पर नमन करती हुई

अंगारे उगलती धरती
धूल से सने
फटे–पुराने वस्त्र
हाथों की
खुरदरी त्वचा
रही–सही
दो–चार
कांच की
चूड़ियों की
खनखनाहट
और
गर्म हवा से
मक्की के पत्तों की

सरसराहट . . .

इन सब के मध्य
लीन वह
अपने
अपरिहार्य कार्य में
उसकी
सिन्दूरी बिन्दी
रक्त की तरह
अविच्छिन्न
पसीने की धारा के साथ
बहती हुई . . .

कहीं रक्त ही तो नहीं था यह?

यह प्रश्न ही था
आकर्षण का कारण
क्योंकि
मक्की के पत्तों की हरियाली
और
उसके चेहरे के पीलेपन की
अस्वीकार्य विपरीतता में
प्रतीयमान थी
उसकी विवशता . . .

बन्दरिया का बच्चा

उस दोपहर
बान की
वह शाख़
कांप उठी

मृत बच्चे को
गोद से सटाये
एक बन्दरिया
चीख़ती चिल्लाती
बेंधती रही
मुझे
भीतर तक

पूरा जंगल
जाग गया था जैसे
हर पौधा
हर पेड़ –
उसकी पीड़ा

पर
बान का
वह वृक्ष
जड़ बन
ढीठ सा
चट्टान बन गया था जैसे

मेरा चेतना–प्रवाह
ख़ून से लथपथ

बहुत ऊँचाई से गिरा था
बन्दरिया का बच्चा
जिसकी चीखें
चीर रही थीं
आकाश

अधीर, अशान्त
असमंजस – मैं
झल्लाने लगा था
बान के उस
पेड़ पर

ज्यों ही
आंख उठाकर देखा
निरन्तर
रक्त – धारा
बहने लगी थी
उस कंपकपाती
शाख़ से

व्यंग्य

व्यंग्य

अतीत से उभरा बिम्ब

अतीत से
उभरा बिम्ब
सजीव हो उठा
सहसा

उसकी
चितकबरी दाढ़ी,
आंख की तीक्षणता,
नुकीलापन
बात का,
तार्किक हठधर्मिता
कृत्रिम,
कुटिल सादगी,
वैचारिक घुमाव
सब के सब
यूं आकर रुके
उसकी मोच खाई
कलाई पर,
बिम्ब
चकनाचूर हो गया

बच पाया
जो कुछ
सादा,
सलवटहीन था . . .

अतीत से उभरा बिम्ब

अतीत से
उभरा बिम्ब
सजीव हो उठा
सहसा

उसकी
चितकबरी दाढ़ी,
आंख की तीक्षणता,
नुकीलापन
बात का,
तार्किक हठधर्मिता
कृत्रिम,
कुटिल सादगी,
वैचारिक घुमाव
सब के सब
यूं आकर रुके
उसकी मोच खाई
कलाई पर,
बिम्ब
चकनाचूर हो गया

बच पाया
जो कुछ
सादा,
सलवटहीन था . . .

उदास चेहरा

दर्पण में उभरता
उदास चेहरा

युग – अन्तराल . . .

भीगा सा,
मटमैला
पुराना
समयातीत पोर्टरेट
अपनी गन्ध
बिखेरता
पूरे कक्ष में . . .

अतीत की परिपूर्णता
वर्तमान का खालीपन
भविष्य में
सम्भावनाएं ढूंढता . . .

मातम

बढ़ती उम्र का
मातम वह
अपनी मूच्छों से
एक–एक
सफेद बाल
नोंच कर
मनाता
हर सुबह

उसकी अर्द्धांगिनी
अपनी देह की
भव्य नग्नता में
देखती
एक झुर्रीदार
दीर्घाकृत परछाई

मानसिक पटल –
भवितव्यता
व
अतीत का
रण
निरन्तर–
अरण्य–रोदन

अस्मिता हमारी

घोंघे हैं
शम्बूक हैं
हम सब

हमारी
अधोमुखी टेर,
मन्थर गति
अपमान
जीवन लय का

हमारी वृत्ति
कृत्रिम, असहज

अतीत
हमारी पहचान

नपुंसक

बहुमंजिली इमारतें
सचिवालय के
लम्बे – लम्बे,
कभी न
ख़त्म होने वाले
कॉरिडोर
ढोते
खोखली – आकृतियां
सुबह दिन शाम
फाईलों के पहाड़ तले
दबते – रहते,
धंसते रहते
हर कक्ष के भीतर
अफसर, क्लर्क
और बाहर
चपरासी
इन्सानी जज़्बों से बेख़बर
फाईलों में डूबे
रचे बसे हुए
फाईलें पहनते,
सूंघते, जीते
वास्तविकता से
मीलों दूर
पंगु
नपुंसक

संकरी गलियों में चाँद

यह
वह शहर है
जिसकी
बुनियाद में
निहित हैं
अवशेष
विश्व की
प्राचीनतम सभ्यता के

हर डगर
कठिन है
कंटीली है
इस शहर की

पूरब का सूर्य
बदल चुका है
दिशा अपनी,
रुलता फिरता है
अर्थहीन
दिशाहीन,
उत्तर और दक्षिण–
एक घातक द्वन्द्व,
पश्चिम का
द्वार बन्द है

चांद
इस शहर की
संकरी गलियों में फैली

सड़ांध से उकताकर
सिकुड़ चुका है

एक अंधी,
गह्वर गुफ़ा है
यह शहर

इसमें
न भाव है
न भावना
न चाह
न चाहना
हर इन्सान
है खौफ़ज़दा यहां
छटपटाता है
चिल्लाता है
उस पागल की तरह
सर पटक–पटक जो
घोंट गला
अपने खौफ़ का
ख़त्म कर देता है
अपना आपा

उस पागल की विडम्बना–
वह जीतता है
अपने को
हारकर,
खोकर
निजत्व अपना

यह शहर

कोई अपवाद नहीं
मैं
जीता हूं
इसे

झूठे अधरों का सच

उस पार
पर्वत का निचला हिस्सा
भरा था उन
गहरे हरे
आदिकालीन
बान के पेड़ों से

इस पार
परिणय के रंग में रंगे
सभी मेहमान
बेसुध
उनकी पुरातन अनुभूति से

गहन–चिन्तन में डूबे
ऋषि–मुनियों की भान्ति
कितने शीतल, शान्त
सन्तुष्ट थे
वे बान वृक्ष

शोरगुल से कोसों दूर
तन्मयता से लीन
अपने ही
रचना संसार में –
न शिकवा
न शिकायत
मानवीय क्रियाकलापों से परे

परिणय–

एक संगम
एक समागम
किस तरह
बना पर्याय
कृत्रिमता का
पता ही न चला

ओढ़ी हुई मुस्कान
लम्बे समय तक
जबड़े को दुखाती,
प्रदर्शनीय लिबास
हर दूसरे व्यक्ति में
विपन्नता बोध जगा
ले जाता दूर
उसके
सरल स्वभाव से,
खोखले अन्तर
सतही संवेदना
का भद्दा नाच,
सादगी
शिकार
विकृत मानसिकता का
या विलुप्त
पृष्ठभूमि में
पाखण्ड की,
निर्मित सौंदर्य
शाब्दिक शोर
अटपटी औपचारिकता
क्षणिक खुशी दे
निरन्तर रोकते
कुछ भी

हार्दिक होने से . . .
अधेड़ उम्र का बाजीगर

द्विध्रुवीय
उसकी बात अक्सर

एक स्तर
अनुभवातीतता का
जिसे
बौद्धिक कलाबाज़ी से
दुरूह बनाता चला जाता वह

दूसरा कामुकता का
जिसके विविध,
घिनौने पहलुओं को
वह यूं उघाड़ता
जैसे
उदात्त जीवन मूल्य हों वे

इन्सान था वह आखिर
इन दोनों स्तरों के मध्य
राग–द्वेष में लिप्त
कामक्रोध लोभ मोह में फंसा
एक आम राहगीर
जो चलता रहा आजीवन,
जीता रहा
अराजक,
उत्तेजक महत्त्वकांक्षा
और
भ्रम
महानता का . . .

मकड़जाल में तन्दरुस्त आदमी

तार्किक चातुर्य
व
अगाध जानकारी का
पारदर्शी आवरण ओढ़े
तात्विक समीक्षा करता रहा वह
सप्रयास, पुरजोर
इंगित करता रहा
अपने ज्ञान के
विविध स्त्रोत बिम्ब–
कितने सटीक
कितने नीरस
कितने अभ्यासित
कितने अभिनीत
कितने कट्टर
कितने संगठित
कितने शाब्दिक
कितने अभिव्यंजक
अनुपस्थित थी तो केवल
तात्त्विक तरलता
मार्मिक मौलिकता . . .

शब्दों के दुर्ग का द्वारपाल

उसका जीवन
शब्द
या मात्र
प्रतिध्वनि उसकी
अनाहत तत्त्व
ध्वनि का
कोसों दूर
उसके अन्तर,
स्नायुतन्त्र में रचे बसे
भाषाई ज्ञान विज्ञान से

शब्दों से अतीत की
गारे मिट्टी से बनी
उसकी वैयक्तिक पहचान
उसके अध्ययन कक्ष की
हर दीवार पर जैसे
लदी पड़ी थी
सटी पड़ी थी
एक दम स्पिक एन्ड स्पैन
क्लैसिसिस्ट अंदाज़ में
यूं लगा
चिनाई में भी जैसे
क़िताबनुमा
ईंट पत्थर लगे होंगे

शाब्दिक उद्‌गम–परिणति से
पूर्णरूपेण भिज्ञ
और

अपनी भिज्ञता को लेकर
सजग भी,
खुश था
अपने शब्द–लोक में वह

उसके लिए
शब्द साधन थे
साध्य भी
आदि थे
अन्त भी
हर द्वन्द्वके
मध्य शब्द,
उससे परे भी

हर घुमाव
हर पड़ाव से
परिचित था वह
शब्दों के

इन सबके बावजूद
निर्जीव,
निष्प्राण था
उसके ज्ञात का ढेर
क्योंकि ताउम्र
तात्त्विक समग्रता की
सर्वोपरि सतह के
क़रीब भी
न पहुंच पाया वह . . .

स्पन्दन

द्वन्द्वात्मक
मन:स्थिति

हृदय में
प्रेमोन्मत
अपार स्पन्दन

मुक्त
हर परिपाटी से

विरक्त
सुसंस्कृत समाज से

ग्रस्त
ओढ़ी नैतिकता से . . .

चिन्तन

लहर लहर बहाव

बहाव संग
बहने का आनन्द . . .

बन जाती है
चट्टान
मन:स्थिति
कभी – कभी
और
रहती है
चिरस्थाई
उन
पोखरों की मानिन्द
ग्रीष्म की
जला देने वाली
तपिश की
कोंचती पीड़ा
सहते हैं जो
और बस
खड़े रहते है
सूखते रहते हैं
मरते रहते हैं
और
फिर जन्मित होते . . .

प्रवाह
और
स्थिरता –
एक द्वन्द्व

एम भ्रम

सत्य–
मात्र होना
दोनों का

काल चक्र

काल–चक्र
सम्भ्रान्त
आगे बढ़ता है
जैसे अथ हो
कोई उसका

अविगत को
विगत बना
भविष्य खोजता
निरन्तर
चलता चला जाता है

काल–चेतना
घटित होती है
सर्वदा
समग्र अन्तरिक्ष
अपने अन्तर में
समेटे हुए

काल–चेतना
आदि–अन्त से परे
निहित चेतन–तत्व जिसमें
रखता है
बाहर इसे
समय की अभिभाज्य
परिधि से
और
भीतर भी

चेतन – तत्व
तरल यथार्थ
केन्द्रक – विहीन
सम्पूर्ण
समक्षणिक
सर्वत्र

सृजन

हो चुकने के
उपरान्त
निश्चित आकृति ले
मृत यथार्थ
बन जाता है
सृजन

सृजन – प्रक्रिया –
अत्यन्त गहन
जीवन्त
सूक्ष्म

एक विचार
अनुभूति – बिन्दु
मानसिक पटल पर
अंकित हो
अकस्मात
निकल पड़ता है
खोज में
अपने अर्थ की

सम्भव नहीं
विघटन
मूल,
वैचारिक बिन्दु का
उसका होता है
मात्र
विस्तारण

अधिकार क्षेत्र जिसका
एक
मनस – विशेष
जिसमें
अंकुरित हो
उन्मुक्त विचरता
यह
आगे बढ़ता है
स्वयंभू,
स्वतन्त्र
अन्ततः
आकार लेता है
प्रस्फुटित हो उठता है
अनायास

सृजन है
यह
एक स्तर पर
जन्म,
ठोस प्रादुर्भाव
उस
विचार का

दूसरे स्तर पर
समापन
उस
विचार – बिन्दु की
यात्रा का

स्वतन्त्र हूँ आज

आज जो है
क्षणिक था
उसका अहसास कल
अपूर्ण नहीं
असहाय था मैं

स्वतन्त्र हूं आज
स्वच्छन्द
विस्तार
तुम्हारा,
सृष्टि का

डूबते सूर्य की
लालिमा तुम
अस्त हो
अदृश्य हो जाओगी
पीछे छोड़
काल–रात्रि
बनना है
जिसे
पृष्ठभूमि
प्रभात की

दिव्यता देह की

दिव्यता देह की
सांस लेती
कसमसाती
तड़पती,
तरसती
नृत्य करती,
उत्सव मनाती
नस नस में
संचरण करती
नवजीवन निरन्तर . . .

दिव्यता देह की
सृजनात्मक सदैव
उपजती, उभरती
उमड़ती एकाएक
उत्तेजक, कामुक
पालक पोषक . . .

दिव्यता देह की
हर सूक्ष्म,
गहन इन्द्रियानुभूति में,
उससे परे भी
होता है जहां
अद्भुत विस्फोट
एन्द्रियजगत में . . .

दिव्यता देह की
पूर्व अनुभव से

अन्तर्निष्ठ
हर आयाम में उसके . . .

दिव्यता देह की
चैतन्य, नित्य
इंगित करती
विदेह लोक,
अनुभवातीत
अथ जहां मुक्त
इति से . . .

जर्जर बैसाखियां

कभी–कभी
आस्तिकता की
धवल धुरी
(अस्ति, अस्ति)
और
सटीक रस
नास्तिकता का
(नेयति, नेयति)
होते हैं प्रतीत
सुरक्षा कवच
मात्र
सैकिन्डहैन्ड क्रचिज़
उन
अध्यात्म–शून्य पंगुओं के
वृत्ति जिनकी
उपहास
परमत्तत्व का
या केवल
प्रदर्शन . . .

गोचर में अगोचर

गोचर जगत
प्रकृत
विविध
विकृत भी
अपने अगोचर तत्व से
ज्यों
पदार्थ
विकृति प्रकाश की,
शब्द
निःशब्द की,
वृक्ष
बीज में निहित
चेतन तत्व की . . .

आकृति

आकृति
प्रतिभास
क्षणभंगुर
एक अहसास
कण कण में छुपी
अदृश्य सत्ता का

साकार
सर्वस्व
मायावी
परिवर्तित होता
खेलता प्रतिपल
छद्मलीला
आड़ में
निराकार
निःसीम की . . .

उर्मि

हृदय में उठती उर्मि
सहज
नैसर्गिक
प्रबल
उद्वेलित होती
गहनतम गर्भ से
सागर के

प्रकट होती
प्रेयसी की
अथाह आंखों में,
प्रेमी के
उन्मत्त आलिंगन में,
ख़ूनी के
खौफ़नाक ख़ंजर में,
साधू के चिरस्थाई
चिन्तन में,
पंछी की
उन्मुक्त उड़ान में . . .

INDIAN INSTITUTE OF ADVANCED STUDY
Acc. No. G-5960
Date 21-3-09
SIMLA

आभार

डा. कैलाश आहलूवालिया (प्रेरणा व प्राक्कथन के लिए),

डा. बलदेव सिंह ठाकुर (सदैव सहयोग एवं प्रोत्साहन के लिए),

डा. जनेश कपूर, रमेश शर्मा व हेमराज शर्मा

'लहर लहर बहाव और अन्य कविताएं' रोशन का पहला कविता संग्रह है जो कि जीवन के विभिन्न आयामों को विविध रंगों में चित्रित करता है। कुछ कविताएं प्रकृति के प्रति संवेदनशीलता से पगी हैं और कुछ कविताओं में प्रेम मुख्य भाव बनकर उभरता है। ग्राम्य जीवन की सहजता गोशाला में छांबरी गाय के दूध की अटूट धारा के साथ प्रवाहित होती है। जहां एक ओर जीवन के सत्य को व्यंग्यात्मक ढंग से परत-दर-परत उकेरने का प्रयास है वहीं दूसरी ओर चिन्तन धारा प्रबल है जिसमें दर्शन और अध्यात्म से ओतप्रोत विचार मनन का मुख्य बिन्दु हैं।

सोलन शहर से लगभग 10 किलोमीटर दूर एक छोटे से गांव प्रहाड़-की-बेड़ में 5 फरवरी 1968 को जन्म। आरम्भिक शिक्षा गांव में, हाई स्कूल व कॉलेज सोलन से। 1989 में एम.ए. और 1993 में शिमला विश्वविद्यालय से अंग्रेज़ी में पी. एच. डी.। 2007-2008 में यूनिवर्सिटि ऑव विसकान्सिन-मैडिसन (यू.एस.ए.) में सीनीयर फुलब्राईट रिसर्च फ़ैलो। 2005-2006 में इण्ड़ियन इन्सटिट्यूट ऑव एंडवांसड स्टडी, शिमला में सह-अध्येता। सर्वोत्तम शोधपत्र के लिए आइज़ैक सिक्वेरा अवार्ड से 2008 में सम्मानित। बतौर सिटिज़न डिप्लोमैट, जनवरी 2007 में शिकागो पब्लिक लाइब्रेरी में इन्टरनैशनल विज़िटर्ज़ सैंटर, शिकागो द्वारा व्याख्यान के लिए विशेष सराहना। आजकल सोलन कॉलेज में वरिष्ठ प्राध्यापक के रूप में कार्यरत। कविता लिखने के अतिरिक्त संगीत व थियेटर में विशेष रुचि।

प्रकाशित पुस्तकें

- माऊण्ट करोल एण्ड अदर पोइमज़ (कविता संग्रह)
- वॉल्ट व्हिटमैन - अ क्रिटिक्ल ईवैल्युएशन (आलोचनात्मक)
- टेल्ज़ ऑव ऐनलाइट्नमण्ट - शॉर्टर फ़िक्शन ऑव राजा राव (आलोचनात्मक, प्रेस में)
- शिरगुल परमार (लोकगाथा, अनुवादित)
- न्यू विस्ताज़ (सह-सम्पादित)
- अण्डर द स्पॉटलाईट (सह-सम्पादित)

ISBN - 978-81-904236-1-8

9 788190 423618

Library IIAS, Shimla
H 811.8 Sh 23 L
G5960

Price Rs. 125.00 / US$10